डॉ. दुर्गा प्रसाद मिश्र

विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग

सैनिक स्कूल गोवालपारा,असम

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की इतिहास संबंधी अवधारणा: एक दृष्टिकोण

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ऐसे प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व थे जिन्हें हम किसी एक दायरें में बाँध कर नहीं देख सकते हैं। उनके सम्पूर्ण संस्कृति एवं साहित्य चिंतन की केन्द्रीय प्रवृत्ति एक है - सांस्कृतिक अतीत के उन पक्षों का उद्घाटन करना जो हमारे लिए एक धरोहर है, जिसकी हमें रक्षा ही नहीं अपितु उसकी पुर्स्थापना की आवश्यकता है । कहने का अभिप्राय है कि उनके विराट् व्यक्तित्व में एक विराट् तत्व विद्यमान है, मानवता की स्थापना करना । प्रस्तुत निवेदित विषय 'इतिहास' संबंधी अवधारणा में इसी मानवता की स्थापना की चेष्टा की गयी है। आचार्य द्विवेदी जिस तरह से अपनी संस्कृति विषयक चिंतन में रूढ़िवादी संस्कृति को स्थान न देकर उनकी गतिशीलता में विश्वास रखते हैं ठीक उसी प्रकार इतिहास संबंधी अपनी स्थापना में जड़ताग्रस्त मानसिकता का प्रतिकार करते हैं। अपनी स्थापना के व्यापक फलक को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "अगर निरंतर व्यवस्थाओं का संस्कार नहीं होता रहेगा, तो एक दिन व्यवस्थाएँ तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देगी।" अपनी इस अवधारणा के पीछे इतिहास को भूतकालीन घटनाओं का संकलन न मानकर उसे में बह जाते हुए जीवंत समाज की विकास कथा का स्रोत मानते हैं । स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी इतिहास को मनुष्य के विकास और भविष्य के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए मनुष्य के जीवनधारा की गति मानते हैं । इस बात का और खुलासा करते हुए कहते हैं " विपत्ति और कष्ट आते हैं और चले जाते हैं, समृद्धि और धनाढ्यता फेन बुद-बुद के समान काल स्रोत में उत्पन्न होती है और विलीन हो जाती है, सामाज्य और धर्मराज उठते हैं और गिर जाते हैं, परंतु मनुष्य फिर भी बचा रह जाता है ।" आचार्य द्विवेदी प्राचीन इतिहास का खण्डन करते हुए कहते हैं कि उस समय का इतिहास कल्पनापूर्ण था चूँकि इतिहासकार किसी -न-किसी राजा के आश्रय में रहा करते थे और राजा को खुश करने के लिए कल्पना का इतना बढ़ाचढ़ा कर वर्णन करते थे कि वास्तविकता का पता ही नहीं चलता था हालांकि उसमें ऐतिहासिकता के तत्त्व विद्यमान थे जिसको खोजने के लिए व्यापक दृष्टि की आवश्यकता पड़ती है । व्यापकता की इसी पूर्ति का विश्लेषण करते हुए कहते हैं "ऐतिहासिक काव्य काल्पनिक निजंधरी कथानकों पर आश्रित काव्य से बहुत भिन्न नहीं होते ।

उनसे आप इतिहास के शोध की सामग्री संग्रह कर सकते हैं, पर इतिहास जो पा नहीं सकते - इतिहास जीवन्त मनुष्य के विकास की जीवन-कथा होता है, जो काल प्रवाह से नित्य उद्घाटित होते रहने वाली नई-नई घटनाओं और परिस्थितियों के भीतर से मनुष्य की विजय यात्रा का चित्र उपस्थित करता है और -जो काल के परदे पर प्रतिफलित होने वाले नये-नये दृश्यों को हमारे सामने सहज भाव से उद्घाटित करता रहता है। भारतीय कवि इतिहास प्रसिद्ध काव्य को भी निजंधरी - कथानकों को ऊँचाई तक ले जाना चाहता है।" आचार्य जी का इतिहास " के प्रति अपना निजी दृष्टिकोण था । वे इतिहास को पीछे देख सकने वाला तीसरा नेत्र मानते हैं। उनका कहना है को पलायन समझना आधुनिकता की तीन शर्तें हैं 'इतिहास प्रेम की बात मैं नहीं जानता मगर इतिहास बोध - एक इतिहास -बोध, दूसरी इस लोक में ही कल्याण होने की आस्था, तीसरी व्यक्तिगत कल्याण की जगह सामूहिक कल्याण की एषणा। मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि जो इतिहास को स्वीकार न करे वह आधुनिक नहीं, और जो चैतन्य को न माने वह इतिहास नहीं ।"

डॉ० रणवीर सिंह रांग्रा को दिये गये साक्षात्कार 'सारिका' में आचार्य द्विवेदी जी अपनी इतिहास संबंधी अवधारणा का विश्लेषण करते हुए कहते हैं " सोचा जाये कि जिसको इतिहास कहा जाता है, वह क्या है? क्या इतिहास में जो कुछ लिखा गया है, वह सब विश्वास करने योग्य है ? जिसको इतिहास कहा जाता है, उसमें एक अटकल ही रहती है। उसमें भी बातों को जोड़-तोड़ कर कल्पना से एक मूर्ति खड़ी की जाती है । इतिहास केवल ऊपर ही ऊपर की वास्तविकता को देखता है । उस अन्तर्निहित सत्य को नहीं देखता, जो मनुष्य के उत्थान में सहायक हुआ है । इतने युगों से मनुष्य गिरता हुआ, कष्ट पाता हुआ भी आगे बढ़ रहा है, उसके भीतर जो ज्योति जल रही है, हम उसकी तस्वीर पेश करते हैं। मैं तो यहाँ तक कहा हूँ कि आज जो मनुष्य है, वह हजार वर्ष पहले भी मनुष्य था। उसमें भी प्रेम था, पीड़ा थी, आकांक्षा थी और अन्याय से जूझने का प्रयत्न था। जो भावनाएँ मनुष्य के भीतर हैं, वह किसी-न-किसी रुप में पहले भी थीं और उन्होंने इतिहास को रुप दिया है । वास्तविक इतिहास मनुष्य को उस चिंतन-वृत्ति को अभिव्यक्ति देता है, जिससे वह निरन्तर निखरता गया है और अनेक कठिनाईयों के बावजूद आगे बढ़ता चला जा रहा है। इतिहास की " थ्योरी" आये दिन बदलती रहती है, पर जो इतिहासपरक उपन्यास है यदि उनमें सचमुच रस हुआ तो वे सदा रहेंगे। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि ऐतिहासक पात्रों का सहारा लेकर मैने इसकी सृष्टि की है और रस से बड़ा कोई न्याय नहीं है।" और आगे आचार्य द्विवेदी जी इतिहास को 'शव साधना' के समान माना है। तांत्रिक, 'शव साधना' में शव का कुलीन होना आवश्यक है व शव-साधक से जब बात करने लग जाये व साधक में प्रलोभन ना आये तभी वह उस शक्ति से साक्षात्कार कर सकता है, जो वर्त्तमान को अधिक सुघर बनाने में, भविष्य के लिए सही मार्ग सुझाने में सहायक हो सकता है । उसी प्रकार इतिहास को भी द्विवेदी जी कुलीन शव मानते हैं । इस बात को प्रमाणित करते हुए कहते हैं 'मरे हुए जमाने की पीठ पर बैठ क र जो पंडित आज ज्ञान का साधना कर रहे हैंवे भी उस प्राचीन मरे हुए काल को उतना ही महत्त्वपूर्ण मान रहे हैं । वह युग हमें दण्ड नहीं दे सकता,

उस युग का उदार नरेश किसी पंडित को प्रति अक्षर पर लक्ष लक्ष का दान नहीं दे सकता, उस युग की सुन्दरी अपने विच्छितिशेष वर्णों से- सिंगारदान के बचे हुए रंगों से - अपने आँचल पर हमारी यशोगाथा नहीं लिखती, उस युग का कोई हूण हमारे नगरों और शास्य क्षेत्रों को आग में नहीं जलाता - वस्तुत: उस युग का ईष्या-द्वेष, राग-विराग, धर्म-अधर्म हमें स्पर्श नहीं कर सकता, फिर भी वह युग हमें आनन्द के अद्भुत लोक में उपस्थित कर देता है, हमारी नस-नस में एक अपूर्व भाव सौन्दर्य उज्जीवित कर देता है । उस युग में कोई क्रिया नहीं है। बड़े-बड़े विशाल मंदिर, जयस्तम्भ, राजप्रासाद और दुर्ग प्राकार इस प्रकार खड़े हैं मानों हंसते-खेलते बिजली मार गई हो, मानो सम्मुख युद्धों में उन्हें किसी ने मार डाला हो । शव साधना का इतना बड़ा साधन कहाँ मिलेगा । प्राचीन युग मर चुका है वह जी नहीं सकता। फिर भी उसकी अच्छी जानकारी हुए बिना हमें सिद्धि नहीं मिल सकती । जितना ही हम उसे समझेंगे, उतना ही वह स्पष्ट होगा कि वह निष्क्रिय शिव आनन्द भैरवाकार है । परमानन्द स्वरुप है, क्योंकि इसके भीतर से हम जो आनन्द पाते हैं वह इच्छा - द्वेष से परे राग-विराग से विनिर्मुक्त है। परन्तु वह समूचा

युग एक साधन है। यदि इस युग का लक्ष्य वह युग ही है तो साधना अधूरी है। पुराने युग के मृत शव पर बैठा हुआ ज्ञानी साधक आकाश से सिद्धि पाएगा। शास्त्र - ज्ञान का लक्ष्य शास्त्र ज्ञान नहीं है । इस प्राचीन युग के आचार-विचार का लक्ष्य आचार-विचार नही है, लक्ष्य है भविष्य का युग । हमारे समूचे प्राक्तन तत्त्वों का ज्ञान हमारे भविष्य के निर्माण में सहायक नहीं होता तो वह बेकार है । हमारे प्राचीन शास्त्रों, रीतियों, क्रियाओं, आचारों के अध्ययन का लक्ष्य भविष्य होना चाहिए । यदि कोई पण्डित समझता है कि पुराना जमाना जीवित हो जायेगा, पुराने आचार फिर से प्रभावित हो जायेंगे, पुराना गौरव फिर पनप उठेगा। तो उसने अपनी साधना का रहस्य नहीं समझा है। इन सब का लक्ष्य है इस युग के कोटि-कोटि मनुष्यों को परामुखापेक्षिता, दरिद्रता अज्ञान और शोषण से

मुक्त करना है। यह क्या संभव है? इस प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का इतिहास के प्रति जो व्यापक एवं गंभीर चिंतन मनन है, वह परिपूर्ण हो जाता है। इस परिपूर्णता में उन्होंने इतिहास- सिंधु के मंथन से मानवता के कल्याण के लिए जो अमृत निकाला है, वह निस्संदेह उन्हें प्रलोभन-विमुख साधक ही प्रमाणित करना है । वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि 'इतिहास केवल व्यक्ति, मनुष्य का नहीं, बल्कि समाज और उसके परिवेश का होता है । अथवा किसी युग विशेष के मानव समाज और उसके परिवेश के संघर्ष का नाम ही इतिहास है अर्थात् मानव प्रयत्नों और परिवेश प्रतिक्रियाओं की अटूट परम्परा से इतिहास है।'